P: ISSN NO.: 2394-0344 RNI No.UPBIL/2016/67980 VOL-3* ISSUE-9*(Part-1) December 2018
E: ISSN NO.: 2455-0817 *Remarking An Analisation*

गांधी एवं अम्बेडकर का सामाजिक न्याय : एक तुलनात्मक अध्ययन

सुरेन्द्र सिंह
सहायक आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

गांधी और अम्बेडकर बीसवीं शताब्दी के सर्वाधिक शक्तिशाली व्यावहारिक राजनीतिज्ञों में प्रमुख स्थान के हकदार है। गांधी और अम्बेडकर दोनों ही दलितोत्थान के पक्षधर थे, उनकी स्थिति में आमूल परिवर्तन करना चाहते थे और प्रत्येक प्रकार के सामाजिक अन्याय का उन्मूलन करना चाहते थे। श्योराज सिंह चौहान का मत है कि '' गांधीजी अस्पृश्यता नष्ट कर हिन्दू धर्म को साफ सुथरा बना कर दीर्घायु करना चाहते थे जबकि अम्बेडकर का उनसे सुधार विषयक बुनियादी मतभेद था। वे जाति–प्रथा को अस्पृश्यता का मूल मनाते थे। गांधीजी के प्रयासों से कितनी अस्पृश्यता दूर हुई और अम्बेडकर कितनी जाति प्रथा नष्ट कर पाए, इनका सही पैमाना तय करना मुश्किल है, लेकिन इस द्वन्द्व ने विचार मंथन की प्रेरणा दी है।

सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में दोनों ने जो माध्यम चुने, उनमें भी काफी हद तक समानता थी। पत्र–पत्रिकाओं के प्रकाशन, सामाजिक संस्थाओं की स्थापना और अहिंसात्मक सत्याग्रह के माध्यम से जन–चेतना उत्पन्न करने वाले उनके कार्यक्रम लगभग समान थे। किन्तु दलितोत्थान के कार्यक्रम संचालन के सन्दर्भ में दोनों के दृष्टिकोणों में मूलभूत अन्तर था। अस्पृश्यता का पुरजोर विरोध करके भी गांधी ने जिस वर्ण–व्यवस्था को स्वीकार किया, वह जन्म पर आधारित होने के कारण अनुदारवादी तथा अस्पष्ट प्रतीत होता है। उनके द्वारा प्रस्तावित प्रारूप में सुधारवाद तो झलकता है, लेकिन परिवर्तनवाद नहीं। अम्बेडकर हिन्दू समाज–व्यवस्था में आमूल परिवर्तन के पक्षधर थे। वे जाति एवं वर्ण–व्यवस्था, दोनों के उन्मूलन के पक्षधर थे। इस प्रकार एक सुधारवादी और एक परिवर्तनवादी दृष्टिकोणों के बीच का अन्तर दोनों की सहभागिता के मार्ग में बाधक रहा।

मुख्य शब्द : गांधी, अम्बेडकर, सामाजिक न्याय, दलितोत्थान, परिवर्तन, सुधार।

प्रस्तावना

भारत विश्व का सबसे बड़ा एवं सफल लोकतंत्र माना जाता है। यह सर्वाधिक विविधताओं वाला देश भी है। इसलिए इतिहासकार रामचन्द्र गुहा ने लिखा है कि ''भारतीय राष्ट्र–राज्य में अनेक राष्ट्रीयता वाली विविधताओं के बावजूद इसका एक हिन्दूस्तान के रूप में अखण्ड़ बने रहना आचर्यजनक है और विदेशी विद्वानों के लिए पहेली।''

प्रत्येक लोकतांत्रिक प्रणाली में समानता, स्वतंत्रता एवं बंधुत्व तीन आधार स्तम्भ माने जाते है। सामाजिक न्याय समानता का ही एक पहलू है। विशेष रूप से भारत जैसे तीसरी दुनिया के समाजों में जहाँ परम्परागत रूप से संस्तरणात्मक समाज अस्तित्व में है, वहाँ सामाजिक न्याय और सामाजिक कल्याण के बिना समानता–स्वंतत्रता की बात करना बेमानी है। भारतीय समाज में सदियों से शोषण एवं भेदभाव पर आधारित जाति–प्रणाली के कारण कुछ वर्ग और समुदाय अस्पृश्यता, दमन, वचन व निर्योग्यताओं का शिकार रहे और आज भी हैं। इन्हें समाज की मुख्य धारा में लाने के लिए हमारे संविधान निर्माताओं ने इनके कल्याण हेतु प्रत्येक क्षेत्र में संरक्षणमूलक, क्षतिपूर्तिमूलक, वितरण–मूलक एवं सकारात्मक प्रावधान किए, जिन्हें आरक्षण या कोटा नीति कहा जाता है।

गांधी एवं अम्बेडकर तकरीबन समकालीन थे। दोनों ही भारतीय समाज की सर्वांगीण उन्नति चाहते थे। दोनों ने ही नारी एवं दलितों के उत्थान के लिए अविस्मरणीय कार्य किया। यद्यपि गांधी व अम्बेड़कर में अनेक समानताएँ थीं तथापि दोनों के विचार, उपागम, पद्धति और प्राथमिकताओं में मौलिक अन्तर था। दोनों ही भारतीय समाज का पुनरुद्धार चाहते थे लेकिन दोनों के नजरिये अलग–अलग थे। गांधी का नजरिया कमोबेश परम्परावादी था जबकि अम्बेडकर आधुनिकता के पक्षधर थे।

अध्ययन का उद्देश्य

'सामाजिक न्याय' शब्द आजकल बहुत चलन में है। आम चर्चा में यह जितना आसान लगता है, बौद्धिक चर्चा में उतना ही कठिन हो जाता है। सामाजिक न्याय की सही व्याख्या उसके ऐतिहासिक, सामाजिक और भौतिक उपादानों के सन्दर्भ में ही हो सकती है। स्वतंत्रता और समानता दोनों सामाजिक न्याय के मूलभूत तत्व है। लेकिन कठिनाई इस बात में है कि दोनों किस अनुपात में हों? तथा भारतीय समाज में सामाजिक न्याय और विकास की दिशा में क्या प्रयास किए गए है, क्या कुछ किया जा रहा है और इन प्रयासों के प्रति समाज की प्रतिक्रिया क्या है आदि ऐसे ज्वलंत प्रश्न है जिनसे आज देश के सामान्य नागरिक का भविष्य जुड़ा हुआ है। सामाजिक न्याय के सन्दर्भ में गांधी व अम्बेडकर अपने चिन्तन एवं कर्म में कितने दूर एवं कितने पास थे, इन्हीं अहम् तथ्यों तथा प्रश्नों को सुलझाना ही प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है।

शोध पद्धति

शोध विषय की व्याख्या और अध्ययन के उद्देश्य के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि शोध विषय के आयाम सैद्धान्तिक, दार्शनिक एवं व्यावहारिक समस्त प्रकार के है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन की प्रकृति के अनुरूप अध्ययन की पद्धति वर्णात्मक एवं विश्लेषणात्मक है। सामाजिक न्याय की अवधारणा के तात्विक आधारों के अभिज्ञान व व्याख्या हेतु यथासंभव गांधी व अम्बेडकर के मूल कथनों को आधार बनाया गया है।

सामाजिक न्याय व सामाजिक समानता के व्यवहारिक व व्यवस्थापरक पक्षों के वर्णन व विश्लेषण के लिए भी सामान्यतः गांधी व अम्बेडकर के मूल कथनों का आश्रय लिया गया है। विषय के अधिकारी विद्वानों के विचारों को भी यथावसर उपयोग किया गया है। जहाँ कहीं आलोचनात्मक टिप्पणियाँ की गई है, वह सदाशय व पूर्वाग्रह मुक्त है। निष्कर्ष विचारों के तार्किक वस्तुनिष्ठ व विवेकसम्मत धारणाओं व तथ्यों के अर्थान्वयन व विश्लेषण पर आधारित होगा।

साहित्यावलोकन

जब कोई अनुसंधान किया जाता है तो भविष्य को दृष्टिगत रखते हुए किया जाता है। वर्तमान में किया गया अनुसंधान ही भविष्य का आधार बनता है। इसी प्रकार वर्तमान में किये जाने वाले अनुसंधान को करने से पूर्व उस विषय में किये गये पूर्व अनुसंधानों का सर्वेक्षण करना जरुरी होता है। क्योंकि यह वर्तमान अनुसंधान की नींव है। इसलिए वर्तमान शोध विषय से सम्बन्धित प्रकाशित साहित्य का यहां अवलोकन किया गया है यथा–

रामगोपाल सिंह ने अपनी रचना 'सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष' 1994 में सामाजिक न्याय की व्याख्या भारतीय सन्दर्भ में की है। इस पुस्तक में कुल सात लेख है। यद्यपि ये सभी लेख अपने आप में स्वतंत्र है फिर भी पूर्व नियोजित और समन्वित विचार परिधि में लिखे जाने के कारण इनमें चरणबद्धता व लयबद्धता तो बनी हुई है और पुनरावृत्ति भी नहीं हो पाई है। प्रथम लेख में सामाजिक न्याय की अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। दूसरे से लेकर पांचवे लेख तक भारत में सामाजिक न्याय के ऐतिहासिक व सांवैधानिक सन्दर्भ, आरक्षण तथा दलित मुक्ति जैसे विषयों को स्पष्ट किया गया है। छठा लेख भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना में अम्बेडकर के अवदान पर प्रकाश डालता है तथा अन्तिम लेख में आधुनिक भारत के प्रमुख समाज दृष्टा और शिल्पकार, गांधी और अम्बेडकर के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण किया गया है।

विश्व प्रकाश गुप्त एवं मोहिनी गुप्त द्वारा लिखी गई पुस्तक 'भारत में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन' 2001 में स्वतंत्रता परवर्ती काल में ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर भारतीय समाज और अर्थव्यवस्था की मुख्य प्रवृत्तियों और संस्थाओं का विश्लेषण किया गया है। यह पुस्तक तीन खंडों में विभक्त हैः पहले खंड में सामाजिक परिवर्तनों की दशा तथा दिशा का आख्यान किया है और उन्हें प्रकृति की शाश्वत प्रक्रिया माना है। दूसरा खंड आर्थिक परिवर्तनों पर केन्द्रित है। इसमें आयोजना, विकास की दशाओं, अर्थव्यवस्था की नवीनतम प्रवृत्तियों और मानवीय पक्ष से सम्बन्धित मुद्दों को उठाया गया है। तीसरा खंड स्वर्ण जयंती का है। इसमें आजादी के पचास सालों की मुख्य तिथियों और घटनाओं का विवरण दिया गया है।

संदीप सिंह चौहान की पुस्तक 'भारत में दलित चेतनाः गांधी और अम्बेडकर' 2004, भारतीय समाज संरचना की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, सामाजिक संरचना में दलितों के स्थान, दलित चेतना के उद्भव एवं विकास तथा दलित चेतना के विकास में गांधी और अम्बेडकर के योगदान का मूल्यांकन करने का छोटा प्रयास है। ''दलित चेतना के विकास जैसे 'साध्य' की प्राप्ति में गांधी एवं अम्बेडकर का चितंन और उनके कार्य परस्पर प्रतिगामी नहीं अपितु पूरक है।'' इस तथ्य को व्यक्त और विश्लेषित करने के साथ–साथ दोनों महानायकों के चिंतन साधनों, तरीकों, विचारों एवं कार्यो में एक 'संवाद' खोजने का प्रयास इस पुस्तक में किया गया हैं।

पूरणमल यादव एवं विजेन्द्र सिंह शेखावत द्वारा लिखित पुस्तक 'दलितोत्थान एवं सामाजिक न्याय' 2008 में भारतीय समाज के बारे में लिखा गया है कि आज राष्ट्र एवं समाज का ध्यान सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा के मुद्दों की ओर केन्द्रित है। यह एक विडम्बना है कि जिन संस्थानों को सामाजिक न्याय एवं सुरक्षा का प्रभार संविधान ने दिया है, बहुधा उन्हीं के विरूद्ध उनमें व्यतिक्रमण का आरोप लगता रहता है। संभवतः हमारे देश की पुरानी कानूनी पद्धति एवं प्रशासनिक ढांचे के कारण यह स्थिति उत्पन्न हुई है या सामाजिक व्यवस्था शुरू से ही, जब से जाति व्यवस्था बनी है। यद्यपि कानूनी प्रावधानों एवं सरकारी प्रयासों के परिणामस्वरूप दलित जातियों के प्रति अन्याय और अत्याचारों का स्वरूप अब पहले जैसा नहीं है लेकिन अभी ओर सुधार की आवश्यकता है तभी सामाजिक न्याय की स्थापना संभव है।

महेन्द्र कुमार मिश्रा की रचना 'भारतीय संविधान में आरक्षण एवं राजनीति' 2009 में आरक्षण की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, संविधान में आरक्षण का महत्व, आरक्षण पद्धति,

शैक्षणिक एवं सामाजिक आरक्षण तथा आरक्षण की राजनीति पर प्रकाश डाला गया है। इसके साथ ही प्रस्तुत रचना में महिला आरक्षण तथा पंचायती राज में महिला आरक्षण का अवलोकन करते हुए आरक्षण व्यवस्था का मूल्यांकन किया गया है।

वीरेन्द्र सिंह यादव की रचना 'नई सहस्त्राब्दी का दलित आंदोलन : मिथक एवं यर्थाथ' 2010 में बताया गया है कि हाल ही में संयुक्त राष्ट्र द्वारा जारी एक रिपोर्ट में कहा गया है कि भारत, नेपाल और पाकिस्तान के समाज में जाति आधारित व्यवस्था के कारण निचली जाति के लोग समाज बहिष्कृत है। यह दुःखद है कि स्वतंत्रता के छः दशक बाद भी देश जातिगत समाज में बंटा है और दलितों पर होने वाले अत्याचारों का साक्षी बना हुआ है। इस देश की सभ्यता आज पन्ने उलट कर वही खड़ी दिखाई देती है, जहाँ से कभी वह शुरू हुई थी। जिस देश में हर धर्म से ऊपर मानवता को स्वीकारने का दावा किया जाता है उसी देश में दलितों से उनके सांवैधानिक अधिकार छीन लिए जाते है। यू तो अनुसूचित जातियों और जनजातियों का आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक सशक्तीकरण केन्द्र और राज्य सरकारों के विकास का एजेन्डा रहा है परन्तु दुःख की बात यह है कि यह बयानों और कागजों पर सीमित हो कर रह जाता है।

रजनीष कौशिक द्वारा लिखित पुस्तक 'आरक्षण व्यवस्था : समस्या या समाधान' 2010 में आरक्षण व्यवस्था के समाज पर प्रभाव को स्पष्ट रूप से दर्शाया गया है। समाज में जनता की पीड़ा क्या है? नियुक्ति एवं प्रोन्नति के समय किन–किन समस्याओं का सामना करना पड़ता है? कार्यालयों में कार्यकुशलता कैसे प्रभावित होती है? प्रतिभावान किस प्रकार से मानसिक रूप से प्रभावित होते है? इसमें अतिरिक्त महिला आरक्षण की आवश्यकता, आरक्षण के आधार आदि इस प्रकार के मुख्य बिन्दु पुस्तक में लिये गये है। इस विषय का वैज्ञानिक रीति से उद्देश्यपूर्ण अध्ययन इस स्तर से होना चाहिए कि कमजोर वर्गो को अधिक लाभ हो और समाज पर कोई बुरा असर ना पड़े।

सुकन पासवान प्रज्ञाचक्षु ने अपनी रचना 'केवल दलितों के मसीहा नहीं है अम्बेडकर' 2011 में लिखा है कि अम्बेडकर ने सदियों से सभी तरह के अधिकार एवं सुविधा से वंचित जनसमूहों में यदि चेतना का संचार किया और उन्हें शिक्षित, संगठित होकर संघर्ष करने का मार्ग बताया तो यह उनका दलित–प्रेम नहीं बल्कि सभी मूल, कुल, वंश, जाति, गोत्र, नस्ल, सम्प्रदाय, वर्ण, वर्ण के अधिकार से वंचितों की सच्ची सेवा का दुर्लभ उदाहरण है। सुविधा तथा अधिकार–वंचित मात्र दलित ही नहीं है, वे भी हैं जिनकी उन्नति तथा समृद्धि के सभी मुहानों को उद्धारक कहलाने वाले मायावी मानवों ने अवरूद्ध कर रखा है। श्रम–समस्या, नारी–उत्थान, धर्म, सामाजिक न्याय, उद्योग, कृषि, मानव–संसाधन, जल–संसाधन, बीमा उद्योग, मद्यनिशेध, शिक्षा, लोकतंत्र, व्यवस्थापिका, कार्यपालिका, न्यायपालिका, संघीय शासन प्रणाली, भाषायी प्रांत और राष्ट्रभाषा आदि विषयों पर अम्बेडकर के चितंन तथा सिद्धांत आज भी प्रासंगिक है।

विद्या जैन की रचना 'गांधी दर्शनः समसामयिक सन्दर्भ' 2012 बदले हुए वैश्विक परिदृश्य में गांधी दर्शन की उपादेयता की पुनः व्याख्या करती है एवं विश्व की समसामयिक चुनौतियों के गांधीय समाधानों पर विमर्श करती है। वैश्वीकरण के वर्तमान स्वरूप में अहिष्णुता, हिंसा एवं आतंकवाद अन्तर्निहित है। औधोगिक–प्रौधोगिक विकास, सैन्य सर्वोच्चता, सांस्कृतिक एवं व्यवसायिकरण ने मानव जाति और धरती मां के समक्ष अस्तित्व का संकट खड़ा कर दिया है। वैश्वीकरण एक संकीर्ण हित को वैश्विक बता कर सम्पूर्ण विश्व पर थोपना चाहता है। इस प्रक्रिया में हिंसा होना स्वाभाविक है जिससे स्थानीय समूह, उनके हित, पहचान और सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है। परिस्थितियों की इस जटिलता ने आज गांधी को सर्वाधिक प्रांसगिक बना दिया है।

श्याम मोहन अग्रवाल की पुस्तक 'गांधी एवं अम्बेडकरः कितने दूर कितने पास' 2013 में लिखा गया है कि सत्य एवं अहिंसा के पुजारी, भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन के मार्गदर्शक राष्ट्रपिता महात्मा गांधी एवं प्रवंचित, दलित, विसंगठित, शोषित और पीड़ित जन–जन के जननायक 'बाबा साहेब' अम्बेडकर अर्थात् दोनों प्रबुद्ध कर्णधारों का चिन्तन एवं कर्म प्रारम्भ से ही दैदीप्यमान रहा है। दोनों विभूतियाँ अपने चिन्तन एवं कर्म में कितने दूर एवं कितने पास थी, इन्हीं अहम् तथ्यों तथा घटनाओं को इस पुस्तक में व्यक्त करने का प्रयास किया गया है।

श्यामलाल ने अपनी कृति 'अम्बेडकर और दलित आंदोलन' 2015 में अम्बेडकर आंदोलन के सामाजिक–राजनीतिक इतिहास और बौद्ध धर्म में धर्मान्तरण के 75 वर्षो की खोज–खबर लेते हुए दलितों के उद्यमों, टकरावों और अनुभवों का लेखा–जोखा प्रस्तुत किया गया है। यह रचना दलितों और भारतीय राजनीति पर अम्बेडकर के भाषणों और आंदोलन के प्रभाव तथा हिन्दू धर्म के अनुष्ठानों एवं चुनौतियों को अलग तरीके से परिभाषित करती है।

सामाजिक न्याय की अवधारणा

समाजिक न्याय का अर्थ है कि समाज के सभी व्यक्तियों को अपने जीवन अस्तित्व को बनाये रखने तथा व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के लिए अवसर की समानता प्राप्त हो। व्यक्ति को जीवित रहने के लिये उसकी बुनियादी आवश्यकताओं–भोजन, वस्त्र एवं आवास की पूर्ति होना आवश्यक है। अतः सामाजिक न्याय का प्राथमिक लक्ष्य समाज के सभी व्यक्तियों के लिये उसकी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति का अवसर जुटाना होना चाहिए क्योंकि अस्तित्व के बिना विकास का प्रष्न उत्पन्न नहीं होता।

स्वतंत्रता और समानता, सामाजिक न्याय के मूलभूत तत्व हैं। दोनों में किसी एक का अभाव सामाजिक न्याय का अभाव है। स्वतंत्रता व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों के विकास के लिये जरूरी है। इस पर रोक लगाने से व्यक्ति की सृजनशील शक्तियाँ कुण्ठित हो जाती हैं, उसमें प्रतिस्पर्धा की भावना दब जाती है और कार्य के प्रति उत्साह घट जाता है। जिससे व्यक्ति के साथ समाज के विकास में भी बाधा पहुँचती है। इसके विपरीत समानता के अभाव में स्वतंत्रता के नाम पर समाज में कुछ

लोग बहुसंख्य लोगों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने में सफल हो जाते हैं, जिससे दासत्व की स्थिति निर्मित हो जाती है। कुछ लोग बहुत आगे बढ़ जाते हैं, दूसरों के लिये जीवन का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। यह स्थिति भी व्यक्ति और समाज दोनों के विकास के प्रतिकूल है। इस प्रकार स्वतंत्र एवं पृथक रूप में दोनों ही स्थितियाँ सामाजिक न्याय एवं विकास के लिए अहितकर हैं।

समाजिक न्याय भारतीय संविधान की आत्मा है। संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक न्याय को मूल उद्देश्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। जहाँ यह स्पष्ट किया गया है कि संविधान का उद्देश्य अपने सभी नागरिकों के लिए सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता तथा व्यक्ति की गरिमा एवं राष्ट्र की एकता सुनिश्चित करने वाली बंधुता का विकास करना है।

भारत में सामाजिक न्यायः गांधी व अम्बेड़कर के सन्दर्भ में

भारत में मुगल साम्राज्य का आखिरी दौर राजनैतिक निराशा और सामाजिक हताशा भरा था। शुरु में बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने पाँव मजबूत किये और शीघ्र ही उसने शेष भारत पर अपना आधिपत्य कर लिया। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के साथ ही भारतीय चिन्तन और जीवन पद्धति में ठोस परिवर्तन का सूत्रपात हुआ। क्योंकि अब भारतीय समाज का आधुनिक एवं लोकतांत्रिक पश्चिमी समाज एवं संस्कृति से प्रत्यक्ष सम्पर्क बढ़ा। अंग्रेजों के सम्पर्क में आने के फलस्वरूप भारतीय जनमानस में एक नई चेतना का विकास हुआ जिससे सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों के विरुद्ध व्यापक जागृति पैदा हुई।

कम्पनी शासन की समाप्ति और ब्रिटिश शासन के प्रत्यक्ष नियंत्रण में आने के पश्चात् भारत में उदारवादी लौकिक शिक्षा का तेजी से प्रसार हुआ। उद्योगों की स्थापना हुई और संचार व आवागमन के साधनों का तेजी से विकास हुआ। भारत में उपनिवेशीकरण की प्रक्रिया ने पाश्चात्यीकरण को जन्म दिया।

भारत में नवजागरण की तीन दशायें थीं। प्रथमतः समाज में एक नव उदित प्रबुद्ध वर्ग ने आडम्बर और अन्ध विश्वास का विरोध करते हुए वैज्ञानिक चिन्तन को ग्रहण करने पर जोर दिया। द्वितीयतः धर्म को कर्मकाण्ड और पाखण्ड से मुक्त कर बुनियादी आध्यात्मिक सिद्धांतों के आधार पर पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया गया। तृतीयतः सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को दूर करने के उद्देश्य से नई संस्थाओं का गठन किया गया और आधुनिक शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु स्कूलों व कॉलेजों की स्थापना की गई। राजा राममोहन राय इस पुनर्जागरण के प्रणेता और आधुनिक भारत के जनक थे। राय ने हिन्दू धर्म की कट्टरवादिता को नकारा और धार्मिक पाखण्ड, अन्धविश्वास व कर्मकाण्ड का जमकर विरोध किया। उन्होंने समाज की बुराइयों को दूर करने के लिए ब्रह्म समाज की स्थापना की। राय ने सन् 1829 में तत्कालीन वायसराय लॉर्ड विलियम बेंटिक के माध्यम से सती प्रथा को अवैधानिक घोषित करवाया। राय की यह जीत परम्परावादिता के विरुद्ध आधुनिकता की विजय थी।

राजा राममोहन राय द्वारा आरंभ किये गये समाज सुधार कार्यो को देवेन्द्रनाथ टैगोर, केशवचन्द्र सेन, स्वामी दयानंद सरस्वती, जस्टिस एम. जी. रानाडे, ज्योतिबा राव फूले, स्वामी अच्युतानंद, श्री नारायण गुरु स्वामी, स्वामी विवेकानंद, गांधी तथा अम्बेडकर आदि ने आगे बढ़ाया।

गांधी का ईश्वर एवं धर्म में दृढ़ विश्वास था किन्तु वे धार्मिक कुरीतियों व अन्धविश्वासों के विरुद्ध थे। उन्होंने एक धार्मिक निकाय की स्थापना पर जोर दिया, जो धर्म–शास्त्रों से अतार्किक आख्यानों, जो नारी व शूद्रों के बारे में भ्रामक विचारों का प्रतिपादन करते है, को ढूंढ़े और उन्हें विलोपित कर धर्म को सही रूप में लोगों के सामने प्रस्तुत करें।

गांधी का लक्ष्य था सर्वोदय समाज की स्थापना। सर्वोदय समाज से गांधी का तात्पर्य एक ऐसे समाज से था जिसमें सभी उन्नत हों, सभी सुखी हो, सभी के साथ न्याय हो। सामाजिक प्रगति में सब समान रूप से भागीदार बने और सभी को सामाजिक प्रगति में समान रूप से हिस्सा मिलें। गांधी यह जानते थे कि सर्वोदय समाज की उनकी परिकल्पना तब तक सार्थक नहीं हो सकती जब तक कि समाज के निर्बल व कमजोर वर्ग विशेष रूप से महिलाएँ और अछुत समुन्नत नहीं होते। इसलिए उन्होंने स्वतंत्रता के लिए संघर्ष के साथ महिलोत्थान तथा हरिजनोद्धार के कार्यक्रम को अपने हाथों में लिया।

भारत में सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए किये गये संघर्ष का इतिहास भीमराव अम्बेडकर के अवदान का उल्लेख किए बिना कभी पूरा नहीं हो सकता। अम्बेडकर एक विद्रोही थे जिन्होंने सबको राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक न्याय दिलाने के लिए संघर्ष किया। आधुनिक युग में न्यायपूर्ण समाज की रचना के लिए देश में जिन सुधारकों ने कार्य किया उनमें से अधिकांश को इस कार्य के लिए प्रेरणा परानुभूति वश मिली। केवल अम्बेडकर ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्हें यह स्वानुभूति वश मिली। अछूत परिवार में जन्म लेने के कारण सामाजिक भेदभाव और तिरस्कार की जो पीड़ा अम्बेडकर ने झेली थी वह किसी अन्य ने नहीं। इसलिए सामाजिक अन्याय के विरुद्ध संघर्ष विशेष रूप से दलितों के उद्धार के लिए संघर्ष को उन्होंने अपने जीवन का ध्येय निरूपित किया। बहुत स्पष्ट शब्दों में अम्बेडकर ने कहा कि जिस दलित जाति में पैदा हुआ उसे मुक्ति दिलाना ही मेरे जीवन का उद्देष्य है, यदि मैं इस उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता तो गोली मार कर अपना जीवन समाप्त कर दूंगा। यह स्वीकारोक्ति सामाजिक न्याय के विरुद्ध संघर्ष के प्रति अम्बेडकर की प्रतिबद्धता और समर्पण को दर्शाती है।

प्रमुख सुझाव

उपरोक्त विश्लेषण से यह तो सिद्ध होता है कि सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए गांधी एवं अम्बेडकर का विशेष योगदान रहा है जिसके कारण भारतीय संविधान की प्रस्तावना में सामाजिक न्याय को मूल उद्देश्य के रूप में प्रस्तुत किया गया है। फिर भी

आज भी भारत में सामाजिक न्याय की दिशा में बहुत कार्य करने की आवश्यकता है और इसके लिए शोधकर्त्ता द्वारा निम्नलिखित सुझाव प्रस्तुत किये जा रहे है यथा–

1. सामाजिक व्यवस्था जाति के स्थान पर तर्क पर आधारित होनी चाहिए।
2. अस्पृश्यता का पूर्णरूप से अन्त होना चाहिए।
3. हिन्दू धर्म का एक प्रामाणिक ग्रन्थ होना चाहिए, जिसे समस्त हिन्दू स्वीकार करें।
4. परम्परागत पुरोहिताई की व्यवस्था समाप्त होनी चाहिए और राज्य द्वारा आयोजित पुरोहिताई की परीक्षा पास करने वाले ही पुरोहित के योग्य समझे जाने चाहिए।
5. सामाजिक संरचना में व्यक्ति की केन्द्रीय भूमिका होनी चाहिए।
6. सम्पूर्ण समाज परम्परागत श्रेणीबद्ध असमानता के स्थान पर न्याय, स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुत्व के आधार पर संगठित होना चाहिए।
7. दलितों को शिक्षा ग्रहण करके स्वावलम्बी बनना चाहिए।
8. धर्म को तर्कसम्मत, विवेकसम्मत, दया, सहानुभूति, प्रेम एवं करुणा पर आधारित होना चाहिए।
9. समाज में सभी को समान महत्व प्राप्त होना चाहिए।
10. सरकारों को भी सामाजिक समानता स्थापित करने हेतु ओर कारगर कदम उठाने चाहिए।
11. बुद्धिजीवियों एवं समाज सुधारक विद्वानों द्वारा समाज में व्याप्त असमानता को दूर करने हेतु अधिक प्रयास करने चाहिए।

निष्कर्ष

भारत विभिन्न धर्मो, जातियों, उपजातियों और वर्गो का देश है और गांधी ने सम्पूर्ण समाज को अपने कार्यक्षेत्र के रूप में चुना था, जबकि अम्बेडकर ने मूलरूप से दलित वर्गो को अपने कार्यक्षेत्र में शामिल किया था। इस कारण गांधी सभी वर्गो का सहयोग लेने के लिए विवश थे तथा उन्हें इस बात का पूरा ध्यान रखना पड़ता था कि कहीं एक वर्ग के हित की बात करते हुए दूसरे वर्ग का अहित ना हो जाए या फिर एक वर्ग के मामले पर बात करते हुए दूसरा वर्ग नाराज ना हो जाए। अम्बेडकर के सामने इस प्रकार की कोई समस्या नहीं थी, क्योंकि उन्होंने स्पष्ट तौर पर दलित वर्ग को अपने कार्यक्षेत्र के लिए चुना था। गांधी किसी एक खेमे में नहीं रह सकते थे क्योंकि उनके सामने दलित और सवर्ण हिन्दू दोनों ही पक्ष में थे जबकि अम्बेडकर के सामने केवल दलितों का ही पक्ष था।

भारतीय संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को अवसर की समानता प्रदान करने का प्रावधान किया है और यह समानता वास्तविक रूप से फलीभूत हो सके, इसीलिए दलित वर्गो के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। प्रारम्भिक समय में दस वर्ष के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया था जिसे राजनैतिक कारणों से प्रत्येक बार विस्तारित किया जाता रहा है। इन प्रावधानों के बावजूद यह एक दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि आरक्षण का यह लाभ दलित वर्ग के अत्यन्त कमजोर लोगों तक नहीं पहुंचा है दलितों के अन्दर भी एक नया अभिजात्य वर्ग उत्पन्न हो रहा है। दलित नेतृत्व को इन नवीन प्रवृत्तियों के प्रति भी सचेत रहने की आवश्यकता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *अग्रवाल श्याम मोहन, गांधी एवं अम्बेडकर : कितने दूर कितने पास, रितु पब्लिकेशन, जयपुर, 2013*
2. *अम्बेडकर, बी. आर., द अनटचेबल, भारतीय बुद्ध शिक्षा परिषद्, बलरामपुर, 1969.*
3. *चौहान, संदीप सिंह, भारत में दलित चेतना, आर बी एस ए पब्लिशर्स, जयपुर, 2004*
4. *दाधीच, प्रमिला, महात्मा गांधी एवं डॉ. बी. आर. अम्बेडकर (भाग–1), रिडर रेफरेंसेज, आगरा, 2015*
5. *गुप्त, विश्व प्रकाश, गुप्ता, मोहिनी, भारत में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन, राधा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2001*
6. *जैन, विद्या, गांधी दर्शनः समसामयिक संदर्भ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2012*
7. *कौशिक, रजनीश, आरक्षण व्यवस्थाः समस्या या समाधान, राधा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2010*
8. *मिश्रा महेन्द्र कुमार, भारतीय संविधान में आरक्षण एवं राजनीति, राज पब्लिशिंग हाउस, जयपुर, 2009*
9. *प्रज्ञाचक्षु, सुकन पासवान, केवल दलितों के मसीहा नहीं है अम्बेडकर, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2011*
10. *रॉय, यू. एस. मोहन. द मैसेज ऑफ महात्मा गांधी, पब्लिकेशन डिवीजन, दिल्ली, 1968*
11. *सिंह, रामगोपाल, सामाजिक न्याय एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1994*
12. *श्यामलाल, अम्बेडकर और दलित आंदोलन, रावत पब्लिकेशंस, जयपुर, 2015*
13. *यादव, पूरण मल, शेखावत, विजेन्द्र सिंह, दलितोत्थान एवं सामाजिक न्याय, पॉइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर, 2008*
14. *यादव, वीरेन्द्र सिंह, नई सहस्त्राब्दी का दलित आंदोलन : मिथक एवं यर्थाथ, ओमेगा पब्लिकेशंस, दिल्ली, 2010*